आमने-सामने

मेरी संस्कृति, मेरी विरासत
-आजी और मां

सुजाता पारमिता

मेरी विरासत की जड़ें गहराई तक मेरी ज़मीन में जमी हुई हैं जो भारत के बहुसंख्यक गरीब दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, पिछड़े वर्ग और स्त्रियों की श्रमजीवी संस्कृति की अस्मिता का प्रमाण है।

भारतीय समाज दो संस्कृतियों के निरन्तर टकराव के इतिहास का गवाह रहा है। एक अभिजात्य वर्ग की ब्राह्मणवादी संस्कृति जो सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है, यथा स्थिति बनाये रखना चाहती है, जिसके राष्ट्रवाद में संस्कृति की परिभाषा अलग है। इस राष्ट्रवाद की भावना के विस्तार के लिए निर्धारित कार्य योजना में उग्र सोच या विचारों की कोई सीमा तय नहीं है। इसी संस्कृति ने भारत को कभी एक वर्ग, जिन्सियत और जाति विहिन धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बनने नहीं दिया। शिक्षा, विज्ञान और तकनीक को कुछ मुट्ठीभर लोगों तक ही समित रख देश के विकास को रोक दिया। देश के इतिहास को एक प्रजातान्त्रिक देश के इतिहास की बजाय गुलाम देश के इतिहास में तब्दील कर दिया।

दूसरी संस्कृति इस स्थिति से हमेशा लड़ती आयी दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, पिछड़े वर्ग और स्त्रियों की श्रमजीवी लोक संस्कृति है जो जंगल, पहाड़, और गांव की ज़मीन से उपजी, उसकी मिट्टी में ही पली-बढ़ी और जो सामाजिक न्याय और सत्ता के विकेन्द्रीकरण को लोकतंत्र की बुनियादी शर्त मानती है।

मैं भी इसी श्रमजीवी संस्कृति की पहचान का हिस्सा हूं। मेरे ही पुरखों ने मोहनजोदाड़ो की उन्नत सभ्यता को मूर्त रूप दिया। अजन्ता-एलोरा की गुफाओं में कलात्मक चित्रकारी की। पत्थरों को तराश कर कुतुबमीनार, खजुराहो, कोणार्क, मीनाक्षी, तंजावुर और हम्पी जैसे अनगिनत मंदिरों को बनाया। दुनिया में प्रेम की सबसे बड़ी निशानी ताजमहल पर बेजोड़ नक्काशी की। ढाका की महीन मलमल और खूबसूरत रेशम बुनी और उस पर सोने-चांदी के तारों से लाखों डिज़ाइन बनाये। हीरे-मोती जड़कर सुन्दर ज़ेवरात बनाये। लोकसंगीत, लोकनाट्य और लोकनृत्यों की अनगिनत शैलियों का निर्माण कर देश को मनोरंजन की कई विधायें दीं। लेकिन भारतीय इतिहास में ऐसे कुशल और बुद्धिजीवी कारीगर और कलाकार गुमनाम ही रह गये।

मेरे आजोबा (नाना) रामाजी दामाजी महार अनाथ थे लेकिन परिवार का महत्व अच्छी तरह से जानते थे। जब तक ज़िन्दा रहे अपने बच्चों की ज़िम्मेदारी को पूरी ईमानदारी के साथ निभाते रहे। मेरी आजी (नानी) भागेरथी बाई नन्देश्वर बड़ी ही ज़िन्दादिल और मेहनती महिला थीं। अनपढ़ होने के बावजूद भी वक्त के साथ बदलने की उसकी ताकत आश्चर्यजनक थी। मेरे आजोबा उस क्लब में काम करते थे जहां अंग्रेज़ अपनी शाम बिताया करते। शराब में सोडा मिलाकर पेग बनाना उन्हें खूब आता था। अंग्रेज़ों के खाने की टेबल लगाना उस पर मेज़पोश बिछाकर नेपकिन, प्लेट, कांटा-छुरी सजाना वह सभी काम करीने से करना जानते थे।

उसी क्लब के पीछे बने नौकरों के कमरों में अन्य कामगारों के साथ ही आजी-आजोबा भी रहते थे। खाने-रहने की व्यवस्था और स्थायी नौकरी उन दिनों दलितों के लिए उस सपने जैसा था जो शायद ही पूरा हो सके। लेकिन आजी का उस माहौल में दम घुटता था। वह जल्दी ही उन सभी सहूलियतों को छोड़कर अपनी उसी बस्ती खलासी लाईन लौट आयीं जहां उसका बचपन

गुज़रा था और जहां उसके सभी अपने रहते थे। बस्ती लौट कर उन दोनों ने एम्प्रेस मिल में मज़दूरी शुरू कर दी।

एम्प्रेस मिल एशिया की सबसे बड़ी कपड़ा मिल थी जिसमें हज़ारों दलित स्त्री-पुरुष मज़दूरी करते थे। उसी मिल की यूनियन की एक सदस्या थी आजी। उन दिनों एम्प्रेस मिल में सी.पी.आई. की यूनियन थी जिसे वह *लाल झंडेची यूनियन* कहा करती थीं। उस यूनियन से आजी को अपनापन नहीं लगता था। उन्हें लगता था कि दलित श्रमिकों की अपनी यूनियन होनी चाहिए। उसका नेतृत्व भी उनका अपना होना चाहिये तभी तो वह उनका दर्द समझेंगे। लाल झंडे की यूनियन का पूरा नेतृत्व सवर्णों के पास था जिसकी प्रतिबद्धता श्रमिक विकास के अलावा भी कुछ ऐसे मुद्दों के साथ थी जो राष्ट्रीय स्तर के थे।

एक शाम मिल से लौटती आजी ने डॉ. अम्बेडकर के आन्दोलन से जुड़े एक कार्यकर्ता की भाषण देते सुना जो शिक्षा के महत्व पर बात कर रहे थे। बेटियों को शिक्षित करना बेटे से भी ज़्यादा ज़रूरी है— उनकी इस बात को वह उस दिन गांठ बांधकर घर ले आयी। वह अनपढ़ है इसीलिए मज़दूरी करती है। यह उनका भाग्य नहीं, उनकी मजबूरी है। लेकिन उनकी सभी बेटियां पढ़ेंगी और बड़ी बनेंगी और सच में उनकी बेटियां उनकी उम्मीद से भी ज़्यादा पढ़ीं। शिक्षा के महत्व को उन्होंने अच्छी तरह समझा।

डॉ. अम्बेडकर ने उस वक्त देश के दलितों को शिक्षित बनने का जो नारा दिया उसका परिणाम कितना प्रभावी हुआ होगा यह मेरे परिवार को देख कर समझा जा सकता है। आजी बस्ती के बच्चों को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करतीं। जब भी संभव होता दीये के लिए तेल देतीं। उस दीये की रोशनी से उस गरीब बस्ती में न जाने कितने बच्चे पढ़ाई करते थे। विश्व युद्ध के दौर में रात-दिन मज़दूरी से कमाये पैसे में उनके परिवार की गुज़र-बसर ही नहीं हो पाती थी फिर भी वह उन सभी बच्चों की मदद करती थीं जो आगे पढ़ना चाहते थे।

मेरी मां, कौशल्या बैसंतरी उस समय हाई स्कूल में पढ़ रही थीं जब 1942 में प्रथम दलित महिला अधिवेशन नागपुर में आयोजित करने का निर्णय लिया गया था। अन्य दलित महिलाओं के साथ-साथ मां को भी उस अधिवेशन का संगठन सदस्य नियुक्त किया गया। डॉ. अम्बेडकर उस अधिवेशन के प्रमुख अतिथि थे। यह जानकर कि डॉ. अम्बेडकर नागपुर आयेंगे बस्ती में सभी बहुत उत्साहित थे। मां और आजी दोनों ही बस्ती की अन्य महिलाओं के साथ अधिवेशन की तैयारी में जुट गयीं। बस्ती से सटे मोहन पार्क में अधिवेशन होने वाला था। घर-घर जाकर सभी महिलाओं को अधिवेशन की जानकारी देना जिसमें डॉ. अम्बेडकर के आन्दोलन और भारतीय समाज पर उसका प्रभाव, जातीयता व पर दलित महिलाओं की भूमिका, दलित स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्मिता, तलाक का निर्णय, दलित महिलाओं का नेतृत्व और राजनैतिक भागीदारी और दलित महिला संगठन की ज़रूरतों जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर बात की जाती थी।

उस समय *भारत छोड़ो आन्दोलन* की भी शुरूआत हो चुकी थी। सभी दलित स्वतंत्र भारत में दलितों की स्थिति को लेकर चिन्तित थे और उन्हें डॉ अम्बेडकर के नेतृत्व में अटूट आस्था थी। शायद इसीलिए यह अधिवेशन बहुत सफल रहा। 25000 दलित महिलाओं की भागीदारी ने डॉ. अम्बेडकर पर भी गहरा प्रभाव छोड़ा जिसे उन्होंने अपने एक मित्र को लिखे पत्र में स्वीकार किया। उस अधिवेशन में डॉ. अम्बेडकर के भाषण का मां और आजी पर इतना ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा कि दूसरे ही दिन उन्होंने अपने घर में रखी भगवान की सभी मूर्तियों को बस्ती के कुएं में डाल दिया। मां ने निर्णय लिया कि वह पढ़-लिख कर डॉ. अम्बेडकर के आन्दोलन को आगे बढ़ाएंगी। हिन्दू धर्म की जातिवादी मान्यताओं को अस्वीकार कर अपने परिवार में असमानता के विरूद्ध नयी सोच बनाने का काम करेंगी।

महिला अधिवेशन के लिए नागपुर आये डॉ. अम्बेडकर को उस समय ही यह सूचना मिली कि उन्हें वायसरॉय की काउन्सिल में श्रम सदस्य के रूप में शामिल किया गया है। यह खबर सभी दलितों के लिए बहुत बड़ी खुशी की बात थी। उम्मीद थी कि नया श्रम कानून उनके हित में होगा। इससे पहले भी 1928 और 1938 में डॉ. अम्बेडकर स्त्रियों के लिए प्रसूति के दौरान वेतन

सहित 21 दिनों की छुट्टियां और परिवार नियोजन के लिए बिल का बम्बई विधान सभा में समर्थन कर चुके थे।

इस अधिवेशन में मां की सक्रिय भूमिका के कारण ही उसे *अखिल भारतीय अनुसूचित जाति, जनजाति विद्यार्थी परिषद* का संयुक्त सचिव बनाया गया। डॉ. अम्बेडकर की अध्यक्षता में आयोजित प्रसिद्ध कानपुर अधिवेशन में वे आजी को भी साथ लेकर गयीं। जब उन्हें पता चला कि डॉ. अम्बेडकर कुछ दलित युवाओं को विदेश उच्च शिक्षा के लिये भेजने का प्रयास कर रहे हैं तब मां ने डॉ. अम्बेडकर से उनसे अनुरोध किया कि वह भी मान्टेसरी ट्रेनिंग के लिए विदेश जाना चाहती है। वापस आकर अपनी बस्ती के बच्चों को शिक्षित करने के लिए वे प्रतिबद्ध हैं। डॉ. अम्बेडकर ने उसी वक्त अपने हाथों से वायसरॉय को पत्र लिखकर मेरी मां को मौका देने की प्रार्थना की। बाद में उसे परीक्षा में शामिल होने का पत्र मिला। उसने परीक्षा भी दी लेकिन अंग्रेज़ी की जानकारी न होने के कारण वे उसमें सफल नहीं हो सकीं।

मेरी मां भले ही जीवन भर अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करती रहीं, कभी जीतीं, कभी हारी भी पर उसकी प्रतिबद्धता में कभी कमी नहीं आयी। जीवन भर वह अपने सरोकारों से जुड़ी रहीं। दिल्ली में पहली दलित महिलाओं की संस्था *भारतीय महिला जागृति परिषद* को 60 के दशक में ही स्थापित कर उसके तहत उन्होंने कई अविस्मरणीय कार्य किये। अपने जीवन के संघर्षों को अपनी आत्मकथा, *दोहरा अभिशाप* में लिखकर गुलाम भारत में दलित स्त्रियों की स्थिति और संघर्ष के हालात का चित्रण पहली बार हिन्दी साहित्य में किया। *दोहरा* अभिशाप को दलित महिला की प्रथम आत्मकथा होने का गौरव हासिल है। इस प्रभावी आत्मकथा ने कई दलित और गैर दलित युवाओं के संघर्ष को प्रेरणा और दिशा दी है।

सुजाता पारमिता *एक चित्रकार हैं।*